ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 179-182**
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.- IV, Issues-38, YEAR- Oct.-Dec.2025

डॉ. रोज केरकेट्टा की कहानियों में सामाजिक अंतर्विरोध

डॉ0 रुद्र चरण माझी
प्राध्यापक– हिन्दी, किस्, मानित् विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर, (ओडिशा) भारत

Received-28.11.2025, Revised-06.12.2025, Accepted-12.12.2025 **E-mail: rudra.majhi2019@gmail.com**

सारांशः ***डॉ. रोज केरकेट्टा का जन्म 5 दिसंबर 1940 को झारखंड के सिमडेगा जिले के कइसरा सुंदर टोली गाँव में एक खड़िया आदिवासी परिवार में हुआ था। उनकी माँ का नाम मर्था केरकेट्टा और पिता का नाम एतो खड़िया था। पिता शिक्षक,समाज सुधारक, नेता तथा संस्कृति–प्रेमी थे, जिससे घर में शुरू से ही शिक्षा और सांस्कृतिक माहौल रहा। इसी वातावरण ने रोज को न्याय और अपनी संस्कृति के लिए कुछ करने की प्रेरणा दी। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा कोंडरा (गुमला), खूँटी टोला और सिमडेगा से प्राप्त की। स्नातक की पढ़ाई सिमडेगा कॉलेज से तथा स्नातकोत्तर और पीएचडी रांची विश्वविद्यालय से पूरी की। पीएचडी का विषय था "खड़िया लोककथाओं का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन"।***

कुंजीभूत शब्द– सामाजिक अंतर्विरोध, कइसरा सुंदर टोली, आदिवासी परिवार, वातावरण,न्याय, संस्कृति, शिक्षक,समाज सुधारक।

रोज केरकेट्टा के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी देते हुए फेमिनिज्म इण्डिया लिखती हैं "उन्होंने उस दौर में अपनी पढ़ाई पूरी की जब आदिवासी, दलित और ग्रामीण समुदायों को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता था। हाशिये पर रह रहे समुदाय के लोगों को जातिगत आधार पर तथाकथित ऊंचा और नीचा मान कर कामों का विभाजन किया जाता था। शिक्षा को उस समय केवल तथाकथित उच्च जातियों का अधिकार माना जाता था। ऐसे भेदभावपूर्ण माहौल में वो न केवल खुद पढ़ीं, बल्कि उन्होंने समाज के अन्य हाशिये पर खड़े समुदायों के लिए शिक्षा की मशाल भी जलाई। उन्होंने विशेष रूप से बिहार और झारखंड के सुदूरवर्ती इलाकों में ग्रामीण, आदिवासी और 'बिरहोड' जैसी जनजातियों के बीच जागरूकता फैलाने का काम किया। महिलाओं और बच्चों की शिक्षा को अपनी प्राथमिकता में रखा और कई परियोजनाएं चलाईं। जिनका उद्देश्य था समाज में फैले ऊंच–नीच और जातिगत भेदभाव को खत्म करना।"

उन्होंने अपना समस्त जीवन आदिवासी भाषा, साहित्य, संस्कृति, महिलाओं के अधिकार तथा हाशिए के समुदायों की शिक्षा के लिए समर्पित कर दिया। खड़िया भाषा को उन्होंने न केवल लेखन के माध्यम से जीवंत रखा, बल्कि उसके संरक्षण के लिए भी निरंतर प्रयास किए।

उनके समाज सुधार कार्य के बारे में अधिक जानकारी देते हुए 'फेमिनिज्म इण्डिया लिखती हैं "राष्ट्रीय स्तर पर उन्होंने कई महत्वपूर्ण आयोजनों में भाग लिया, जिनमें रांची में आयोजित आदिवासी सम्मेलन, बेंगलुरु, दिल्ली, कोलकाता और छत्तीसगढ़ में हुए मानवाधिकार विषयक आयोजन शामिल हैं। इसके अलावा उन्होंने पटना, रांची और कोलकाता में आयोजित राष्ट्रीय नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन में भी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज की। उनका अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी बहुत अच्छा योगदान रहा है। साल 1994 में बर्लिन में हुए आदिवासी दशक के उद्घाटन समारोह में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया। इसके अलावा, वे वर्ल्ड सोशल फोरम और इंडियन सोशल फोरम जैसे बड़े वैश्विक मंचों पर भी सक्रिय रहीं। इन आयोजनों में उन्होंने जेंडर, जमीन के अधिकार, शिक्षा, पलायन, उत्पीड़न और सांस्कृतिक संरक्षण जैसे मुद्दों पर अपनी मजबूत और साफ आवाज़ दुनिया के सामने रखी। इससे आदिवासी विषयों या विमर्श को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिली।"

उस दौर में जब आदिवासी–दलित और ग्रामीण समुदायों को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता था तथा शिक्षा को केवल तथाकथित ऊँची जातियों का विशेषाधिकार माना जाता था, रोज केरकेट्टा ने न केवल स्वयं उच्च शिक्षा प्राप्त की, अपितु बिहार–झारखंड के सुदूर जंगलों में बिरहोर जैसी अति पिछड़ी जनजातियों तक पहुँचकर शिक्षा का अलख जगाया। उन्होंने बालिकाओं एवं बच्चों की शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी और अनेक परियोजनाएँ चलाईं, जिनका उद्देश्य जातिगत भेदभाव एवं ऊँच–नीच को समाप्त करना था।

राष्ट्रीय स्तर पर रांची आदिवासी सम्मेलन, बेंगलुरु– दिल्ली– कोलकाता– छत्तीसगढ़ के मानवाधिकार आयोजनों तथा पटना– रांची– कोलकाता के राष्ट्रीय नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलनों में उन्होंने प्रभावशाली भूमिका निभाई। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 1994 में बर्लिन में "विश्व आदिवासी दशक" के उद्घाटन समारोह में भारत का प्रतिनिधित्व किया तथा वर्ल्ड सोशल फोरम और इंडियन सोशल फोरम जैसे वैश्विक मंचों पर भी सक्रिय रहीं। इन सभी मंचों पर उन्होंने लिंग, भूमि–अधिकार, शिक्षा, पलायन, उत्पीड़न और सांस्कृतिक संरक्षण जैसे मुद्दों पर सशक्त आवाज उठाई। फलस्वरूप आदिवासी प्रश्नों को वैश्विक मानवाधिकार विमर्श में स्थायी स्थान मिला।

झारखंड की इस प्रसिद्ध आदिवासी लेखिका, कवयित्री, शिक्षाविद् एवं सामाजिक कार्यकर्ता डॉ. रोज केरकेट्टा का निधन 17 अप्रैल 2025 को रांची में प्रातः लगभग 11 बजे 84 वर्ष की आयु में हो गया। उन्होंने जीवनभर जल–जंगल–जमीन, आदिवासी अधिकार, शिक्षा और संस्कृति संरक्षण के लिए संघर्ष किया। उनके निधन पर झारखंड सरकार, सामाजिक संगठनों तथा बुद्धिजीवियों ने गहन शोक व्यक्त किया। उनकी विरासत आदिवासी सशक्तीकरण, स्त्री–विमर्श और साहित्य में सदा अमर रहेगी।

आदिवासी समुदाय की प्रख्यात लेखिका डॉ. रोज केरकेट्टा एक कवयित्री, शिक्षाविद्, और मानवाधिकार कार्यकर्ता थीं। उन्होंने हिंदी और खड़िया भाषा में साहित्य रचना की, जिसमें आदिवासी जीवन, सामाजिक न्याय, और स्त्री विमर्श के मुद्दे प्रमुखता से उभरे। उनकी प्रमुख रचनाएँ जैसे पगहा जोरी–जोरी रे घाटो, बिरुवार गमछा और रोज केरकेट्टाः प्रतिनिधि कहानियाँ आदि ग्रंथों में आदिवासी संघर्षों और सामाजिक कुरीतियों को संवेदनशीलता से प्रस्तुत करती हैं। रोज केरकेट्टा ने झारखंड आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई और आदिवासी भाषा, संस्कृति, और महिला अधिकारों के संरक्षण के लिए जीवन समर्पित किया। उन्होंने रांची विश्वविद्यालय के जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग (1982–2000) में खड़िया भाषा पढ़ाई और बिहार व झारखंड शिक्षा परियोजना में महिला सशक्तीकरण के लिए काम किया। 2002 में उन्होंने अपने पिता के नाम पर प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन की स्थापना की। उनके साहित्य में आदिवासी समाज में पाए जानेवाले विसंगतियाँ के विरुद्ध स्पष्टोक्ति दिखाई देती है।

आदिवासियों को इस भूभाग के मूल निवासियों के रूप में पहचाना जाता है। डार्विन का सिद्धांत इस धारणा का समर्थन करता है कि आदि मानव से मानव प्रजाति विकसित हुई है। हजारों सालों से आदिवासियों का जल, जंगल और जमीन से गहरा संबंध रहा है और वे इनकी रक्षा करते हैं। सभ्यताओं के उद्भव से पहले, आदिम युग के दौरान पूरी वैश्विक आबादी कबीलाई जीवन पद्धति में

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

रहती थी। इन प्रारंभिक मानव समूहों का जीवन शिकार और जंगल से संसाधनों के उपयोग पर बहुत अधिक निर्भर था। जैसे–जैसे वे सभ्यता के सिद्धांतों को अपनाया, उनकी आदिमता कम हो गई और वे जीवन जीने के अधिक मानवीय तरीके की ओर बढ़ गए। भारतीय समाज पर विशेष रूप से नजर डालने से यह स्पष्ट होता है कि वर्ण व्यवस्था ने समाज को विभाजित कर के रखा है। समय के साथ, अनुसंधान, अध्ययन, विवाद, विचारधारा, प्रतिरोध, परिवर्तन और बेहतर भविष्य की योजनाएँ समाज के भीतर घटित हुई हैं। भारत में वर्ण व्यवस्था के शुरुआत के साथ–साथ आदिवासी समाज ने मूल रूप से दूसरों से अलग अपनी कबीलाई जीवन जीना शुरू कर दिया। वहीं दूसरी ओर तथाकथित सभ्य समाज समतलीय इलाके में, सुरक्षित और सुविधाजनक जीवन जीने की खोज में आगे बढ़े, परंतु आदिवासी समाज जंगलों, पहाड़ों, नदियों, और वन्य जीवों के बीच रहकर प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर आगे चलने की निर्णय लिया। प्रकृति से जुड़ा रहा और उसे सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी को निभाया।

इस धरती के मूल निवासी आदिवासियों को माना जाता है। प्रकृति के साथ उनका नजदीकी संबंध आदि काल से है। इस दृष्टि से आदिवासी जल, जंगल और जमीन को अपना सबकुछ मानते हैं और उन्हें संरक्षित करने के उपाय करते है। भारत में अनेक समुदाय के आदिवासी समुदाय पाये जाते हैं, जिनके भिन्न–भिन्न भाषाएँ, संस्कृतियाँ और जीवन शैलियाँ होती हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक, और भौगोलिक परिस्थिति के आधार पर आदिवासी समाज की विशेषताएं एक दूसरे से थोड़ी–बहुत अलग हो सकती है परन्तु उसकी मूल तत्व एक ही है।

इन विशेषताएं होने के बावजूद आदिवासी समाज अपने प्राकृतिक जीवन जीने के तरीके के लिए जितने प्रसिद्ध हैं उसके विपरीत आदिवासी समाज में दिखाई देने वाली कुरीतियों, पारंपरिक प्रथाओं और अंधविश्वासों के लिए भी उतनी चर्चित रहती हैं। सदियों से जंगल में रहने के कारण आदिवासी समाज शिक्षा जैसी बुनियादी जरूरतों से दूर रहा है, जिसके परिणामस्वरूप उनमें वैज्ञानिक चेतना की कमी दिखाई देना स्वाभाविक है,जिसके कारण आदिवासी समाज में अंधविश्वास फैलती गई और आदिवासी समाज में अंतर्विरोध दिखाई देने लगा। आदिवासी समाज अपनी पारंपरिक ज्ञान परंपरा एवं स्व–शासन व्यवस्था के लिए जितने प्रसिद्ध है, उनमें दिखाई देनेवाली अंधविश्वास के लिए कभी–कभी उन्हें शर्मसार भी होना पड़ता है।

इस अंतर्विरोध को स्पष्ट रूप में उल्लेख हमें आदिवासी रचनाकार डॉ. रोज केरकेट्टा की कहानियों में दिखाई देती है। रोज केरकेट्टा द्वारा रचित कहानी 'प्रतिरोध' में आदिवासी समाज के अंतर्विरोध को दिखाया गया है। यह कहानी 'बिरुआर गमछा तथा अन्य कहानियाँ'नामक कहानी संग्रह में प्रकाशित हुई है। इस कहानी में कहानीकार आदिवासी समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक विचारधारा को उजागर करती हुई आदिवासियों की कुंठित मनोदशा को दिखाते हैं। इस कहानी में भालूबासा और रजाबसा गाँव की दो आदिवासी लड़कियाँ अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ती हुई नजर आती हैं।

रोज केरकेट्टा लैंगिक आधार पर किसी भी तरह के भेद–भाव को स्वीकार नहीं करती और उसका प्रतिकार करती हैं। आदिवासी समाज में स्त्री–पुरुष को समानता की दृष्टि से देखा जाता है, परंतु बाहरी लोगों के संपर्क में आने से उनकी संस्कृति धीरे–धीरे खत्म हो रही है। परिणाम स्वरूप आदिवासी समाज में भी 'दिकु संस्कृति' पनप रही है। आदिवासियों की आदर्श समाज में भी लिंग–भेद दिखाई दे रही है। इस असमानता को आलोचना करती हुई रोज केरकेट्टा लिखती हैं" हाँ, भाई लोग बहनों से दातुन, दोना बिचवाएँगे, अपनी पत्नियों को अंडा जैसा जोगा(संभाल) कर रखेंगे। बहनों को दिल्ली– गोवा भेजेंगे, उनकी कमाई से अपने बच्चों को पालेंगे।"

उपर्युक्त कथन के माध्यम से रोज केरकेटा आदिवासी महिलाओं की बात करती हैं, जिन्हें कुछ पैसों के लिए दिल्ली, मुंबई जैसे सहर में काम करने के लिए भेज देते हैं, परन्तु आदिवासी पुरुष अपनी बीबी को नहीं भेजते।'प्रतिरोध' कहानी में एक आदिवासी स्त्री के द्वारा कही गयी यह कथन आदिवासी समाज में व्याप्त पुरुषवादी मानसिकता को दिखाया है। आदिवासी महिलाएं भी प्रताड़ित होती हैं, वे प्रतिरोध करें तो किससे करें? उन पुरुषों को वे कैसे विरोध करें ? क्योंकि वे पुरुष उनके भाई, पति, पिता, सखा हैं और बराबरी के सतत संघर्ष में उसके मददगार भी। इसीलिए तमाम अंतर्विरोध के बावजूद आदिवासी नारी किसी से खुद को कम नहीं आंकती।

आदिवासी समाज में इस तरह के कई अंतर्विरोध दिखाई देते हैं।'डायन' प्रथा इसकी एक प्रमुख उदाहरण है। आदिवासी समाज में स्त्री को पुरुष के समतुल्य जहाँ मानी जाती हैं वहीं स्त्री को विधवा हो जाने पर आदिवासी समाज के लोग ही उसे 'डायन' साबित करने में लग जाते हैं, ताकि पैसे और जमीन उस महिला से आसानी से छीना जा सके। इस प्रकार कहीं न कहीं आदिवासी समाज की सामूहिकता एवं सहजीविता कभी–कभी टूटती–बिखरती नजर आती है।

आदिवासी समाज में व्याप्त पुरुषवादी मानसिकता की उदाहरण उनकी दूसरी कहानी "भवँर" में भी दिखाई देती है। इस कहानी में एक विधवा मालकिन और उसकी दो बेटियों, सुमन और मंजरी, के जीवन के दुखद और संघर्षपूर्ण अनुभवों को चित्रित करती है, जो सामाजिक, आर्थिक और कानूनी व्यवस्थाओं की कमियों और समाज की क्रूरता के बीच फँसकर अपनी पहचान और अस्तित्व की लड़ाई लड़ती हैं। कहानी का केंद्रीय भाव सामाजिक असमानता, स्त्री की असुरक्षा और विश्वास की शक्ति के बीच टकराव को दर्शाता है, जो एक ऐसी व्यवस्था में जीवित रहने की कोशिश करती है जो कमजोरों को कुचल देती है। मालकिन और उनकी बेटियाँ समाज की उपेक्षा और क्रूरता का शिकार हैं। विधवा होने के कारण मालकिन को न केवल सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता है, बल्कि उनकी संपत्ति और सम्मान भी खतरे में पड़ जाते हैं। कहानी यह दर्शाती है कि कानून (जैसे, हिंदू स्त्रियों की संपत्ति पर अधिकार अधिनियम, 1937) होने के बावजूद, सामाजिक बाहुबल और रूढ़ियाँ स्त्रियों को उनके हक से वंचित रखती हैं। मालकिन कि बेटी कमल के किरदार को लेकर अफवाहें और समाज का संदेह मालकिन के प्रति नकारात्मक धारणा बनाता है। समाज में एक विधवा और उसकी बेटियों के प्रति संदेह और असुरक्षा की भावना उनके जीवन को और कठिन बनाती है। यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था को उजागर करता है, जो स्त्रियों को स्वतंत्रता और सुरक्षा से वंचित रखती है। एक विधवा एवं असहाय स्त्री की विवशता को फ़ायदा उठाते हुए गवोंवाले मालकिन की जमीन पर कब्ज़ा कर लेते हैं। इसकी वर्णन करती हुई रोज केरकेटा 'भवँर' कहानी में लिखती हैं "देखते–देखते समय बीतने लगा, माघ का महीना आया। पुरखे कह गए हैं– माघ की ठिठुरन जिसने झेली, उसने झेल सब लिया। पाला पड़ा, रबी की फसल चौपट हो गई। ऐसे पालामार ठंड में मालकिन के गाँव के बगलवाले गाँव में हलचल मची थी। रविवार का दिन था। गाँव से पंद्रह हल लेकर लोग मालकिन के खेत में चढ़ गए थे। हलवाले हल जोत रहे थे, स्त्रियाँ घूम रही थीं और बच्चे उधम मचाए हुए थे। गाँव के बीच से धुआँ उठ रहा था, साफ पता चल रहा था कि गाँव में आज कोई अनुष्ठान हो रहा है। रोकाड़ी बसुआ ने देखा तो जाकर मालकिन को खबर दी, खबर सुनकर मालकिन को काठ मार गया। उनका गला सूख गया। वह दौड़कर खेत की ओर जाने

लगीं, लेकिन लड़खड़ाकर बीच में ही बैठ गई, आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सुमन ने माँ को लड़खड़ाते देखा तो वह उसकी ओर भागी। वह समझदार थी। तुरंत माँ के सिर को बाँहों में सँभाला और पीठ को देर तक सहलाती रही। बेटी का स्पर्श पाकर माँ के सब्र का बाँध टूट गया। वह हिलक–हिलककर रोने लगी। सुमन चुप रही। इस वक्त बेटी माँ बन गई थी और माँ बेटी। वे दोनों बहुत देर तक उसी हालत में बैठी रहीं।"

उपर्युक्त प्रकरण से स्पष्ट है कि पड़ोस के गाँव के लोगों द्वारा मालकिन के खेत में हल चलाना सिर्फ एक अतिक्रमण नहीं था बल्कि एक विधवा स्त्री की विवशता का फ़ायदा उठाकर उनके जमीं को हडपना जैसे अनैतिक कार्य करना सचमुच आदिवासी समाज के सामूहिकता के प्रति प्रश्न चिन्ह खड़ी करती है। इस घटना से मालकिन को गहरा आघात पहुँचता है, जो उनकी असहायता और भय को दर्शाता है। मालकिन की शारीरिक और मानसिक कमजोरी से लड़खड़ाकर बैठ जाती हैं यह उनके मन में उठे तनाव और दुख को व्यक्त करती है। इस संकट के क्षण में बेटी सुमन का समझदारी और संवेदनशीलता भरा व्यवहार माँ–बेटी के गहरे रिश्ते को उजागर करता है। कुल मिलाकर, यह कथन ग्रामीण जीवन की कठिनाइयों, सामुदायिक गतिविधियों और पारिवारिक रिश्तों की गहराई को दर्शाता है, जिसमें संकट के समय मानवीय संवेदना और सहारा प्रमुखता से उभरता है।

तत्कालीन परिस्थितियों के बारे में जानकारी देते हुए रोज केरकेटा लिखती हैं "मालकिन और बेटियाँ आज जान गई कि वे कितनी असहाय और अकेली हैं। अपना कहने को कोई नहीं है। 14 अप्रैल, 1937 ई. को 'हिंदू स्त्रियों की संपत्ति पर अधिकार अधिनियम 1937' पारित हो चुका था। इसे कृषि योग्य जमीनों पर 'बिहार अधिनियम 6, सन् 1942' के द्वारा लागू किया गया। इससे पहले सामाजिक कानून के तहत भी विधवा को पति की संपत्ति पर परिसीमित हक था। मालिक की मृत्यु के बाद मालकिन ने धीरे–धीरे ये सारी बातें सुमन को समझानी शुरू की थीं, परंतु साथ ही उन्होंने अनुभव कर लिया था कि कानून से सामाजिक व्यवस्था बँधी नहीं है। सामाजिक व्यवस्था भी उनके लिए है, जिनके पास बाहुबल है। इसलिए कानून को या सामाजिक व्यवस्था को जमीन पर उतारने की कोशिश की जाएगी तो उसका भारी मूल्य चुकाना पड़ेगा। फिर समाज को स्त्रियों से क्या लेना–देना? समाज को जो चलाते हैं, वे अपनी मरजी से व्यवस्था बदल भी सकते हैं। पर जीना है तो संघर्ष का रास्ता ही चुनना है। मालकिन को एक ही भरोसा था कि कुटुंब शायद दोनों बेटियों के विवाह होने तक उस पर रहम करे, परंतु परिवेशजन्य साक्ष्य इस भरोसे की धज्जियाँ उड़ा रहे थे।"

उपर्युक्त कथन के माध्यम से लेखिका रोज केरकेटा तत्कालीन सामाजिक और कानूनी परिस्थितियों के संदर्भ में बताती हैं कि 1937 में 'हिंदू स्त्रियों की संपत्ति पर अधिकार अधिनियम' और 1942 में बिहार में इसे लागू करने वाले कानून के बावजूद, विधवाओं को संपत्ति पर सीमित अधिकार प्राप्त थे। मालकिन ने अपनी बेटी सुमन को इन कानूनों के बारे में समझाना शुरू किया, लेकिन वे यह भी समझ चुकी थीं कि कानून का अस्तित्व सामाजिक व्यवस्था को नियंत्रित करने में अपर्याप्त है। समाज में वास्तविक शक्ति बाहुबल और सामाजिक प्रभाव वालों के पास है, और कानून को लागू करने की कोशिश करने पर भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है।

कथन यह दर्शाता है कि समाज में स्त्रियों की स्थिति पुरुष–प्रधान व्यवस्था के अधीन है, जहाँ सामाजिक नियम और व्यवस्था शक्तिशाली लोगों की इच्छा पर निर्भर करती है। मालकिन और उनकी बेटियों को इस कठोर वास्तविकता का सामना करना पड़ रहा है कि उनके पास कोई ठोस सहारा नहीं है। मालकिन को केवल यह उम्मीद है कि परिवार और समाज उनकी बेटियों के विवाह तक उन पर दया दिखाए, लेकिन परिस्थितियाँ इस उम्मीद को भी तोड़ रही हैं।

रोज केरकेटा द्वारा रचित "केराबांझी" कहानी में सामाजिक रूढ़ियों, पितृसत्तात्मक मानसिकता और एक पढ़ी–लिखी महिला की आत्म–सम्मान की लड़ाई को दिखाया गया है। समाज में स्त्रियों के प्रति अपमानजनक दृष्टिकोण, शिक्षा के महत्त्व और आधुनिकता बनाम परंपरा के बीच टकराव को उजागर करता है। बालधन की बहू का अपने ससुर के सामने दृढ़ता से खड़ा होना यह दर्शाता है कि शिक्षा और आत्मविश्वास के बल पर व्यक्ति सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती दे सकता है। यह कथन नारीवादी दृष्टिकोण को मजबूती से प्रस्तुत करता है, जहाँ एक महिला अपनी मर्यादा बनाए रखते हुए भी अपनी बात रखने का साहस दिखाती है। कालीचरण इस कहानी का केंद्रीय पात्र है, जो पारंपरिक और पितृसत्तात्मक समाज का प्रतीक है। वह अपनी बहू को "केराबांझी" (बंजर, अर्थात् संतानहीन) कहकर ताने मारता है, जो समाज में प्रजनन को स्त्री की पहचान और मूल्य से जोड़ने की रूढ़िगत मानसिकता को दर्शाता है। उसकी बातों में यह स्पष्ट है कि वह अपनी बहू को केवल एक संतान पैदा करने वाली "मशीन" के रूप में देखता है और उसकी पढ़ाई–लिखाई या व्यक्तित्व का कोई सम्मान नहीं करता।

"केराबांझी" कहानी में कालीचरण कहता है "ई बालधनवा को देखो। एके गो बेटी जनमा के तरना चल रहा है। अरे कोटी–कुकुर से का होगा? कनियो ओइसने लाया है। अरे बहुवा, पूरा समाज, जात–गोतिया तुम्हें नाम धरेगा। केरा बाँझी कहेगा रे। हाँ, केराबांझी कहेगा। बालधन के कहे में मत चलना। बालधन और मनबोध तो कुलबोरन हैं कुलबोरन।' अभी तक मनबोध पिता की बातें सुन रहा था। बालधन ने मनबोध को मना कर रखा था कि पिता की बातों का जवाब ही नहीं देना है। लेकिन पिता की बातों ने अचानक स्थिति बदल दी थी। घर पर बालधन नहीं था। उनकी अनुपस्थिति में पिता भौजी के लिए ऐसी अशोभनीय बातें कह रहे थे। मनबोध से रहा नहीं गया। वह बाहर निकल आया। बहुत व्यथित था, पिता की बोलियों से। उसने कहा, 'पिता जी, अपनी बहू के लिए ऐसा कहते हुए आप शर्म करें। आपका बेटा भी अभी घर पर नहीं है।' बाप बोला, 'तो जा, उसे भी बुला ला। वह होगा भी तो क्या कर लेगा मेरा हाँ! क्या कर लेगा मेरा?' मनबोध परयागो के सामने बात बढ़ाना नहीं चाह रहा था। उसने कहा, 'भौजी पढ़ी–लिखी है। कुछ तो खयाल करो। क्या सोचेगी आपके बारे में?"

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है समाज में स्त्रियों के प्रति अपमानजनक दृष्टिकोण, शिक्षा के महत्त्व और आधुनिकता बनाम परंपरा के बीच टकराव को उजागर करता है। बालधन की बहू का अपने ससुर के सामने दृढ़ता से खड़ा होना यह दर्शाता है कि शिक्षा और आत्मविश्वास के बल पर व्यक्ति सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती दे सकता है। यह कथन नारीवादी दृष्टिकोण को मजबूती से प्रस्तुत करता है, जहां एक महिला अपनी मर्यादा बनाए रखते हुए भी अपनी बात रखने का साहस दिखाती है।

कालीचरण शिक्षा को अपने पारंपरिक मूल्यों के लिए खतरा मानता है। वह आधुनिकता और शिक्षा को अपने परिवार की परंपराओं के उल्लंघन के रूप में देखता है। यह पुरानी और नई पीढ़ी के बीच वैचारिक टकराव को उजागर करता है। आज की नई पीढ़ी, जो शिक्षित और जागरूक है, पुरानी रूढ़ियों को चुनौती देने के लिए तैयार है। हालांकि, वह अपने पिता के क्रोध के सामने पीछे हट जाता है, जो यह दर्शाता है कि पितृ–सत्तात्मक प्रभुत्व अभी भी मजबूत है और व्यक्तिगत विद्रोह को दबाने की शक्ति रखता है।

आदिवासी कथाकार डॉ. रोज केरकेटा की कहानी पितृ–सत्तात्मक समाज की जकड़न, शिक्षा की परिवर्तनकारी शक्ति, और व्यक्तिगत दृढ़ता को उजागर करता है। बालधन की बहू का चरित्र इस कथन का नायक है, जो अपनी बुद्धिमत्ता और आत्म–सम्मान के बल पर सामाजिक अपेक्षाओं को चुनौती देती है। कालीचरण की हार, भले ही क्षणिक हो, यह संदेश देती है कि प्रगतिशील विचार और आत्मविश्वास अंततः रूढ़ियों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। यह कथन हिंदी साहित्य में सामाजिक परिवर्तन और नारी सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

डॉ. रोज केरकेट्टा की कहानियाँ आदिवासी समाज के अंतर्विरोधों, सामाजिक कुरीतियों, और पितृसत्तात्मक मानसिकता के खिलाफ एक संवेदनशील और शक्तिशाली आवाज हैं, जो हिंदी साहित्य में सामाजिक परिवर्तन और नारी सशक्तिकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। उनकी कहानियाँ, जैसे प्रतिरोध, भवँर, और केराबांझी, आदिवासी समाज की सामूहिकता, प्रकृति से गहरे जुड़ाव, और पारंपरिक ज्ञान परंपरा को उजागर करती हैं, साथ ही अंधविश्वास, लैंगिक असमानता, और सामाजिक बाहुबल जैसी कुरीतियों की आलोचना करती हैं।

रोज केरकेट्टा की रचनाओं की प्रमुख विशेषता उनकी नारीवादी दृष्टि है, जो आदिवासी महिलाओं की असहायता, शोषण, और संघर्ष को चित्रित करते हुए उनकी दृढ़ता और आत्म–सम्मान को रेखांकित करती है। प्रतिरोध में लैंगिक भेदभाव के खिलाफ स्त्रियों का संघर्ष, भवँर में विधवा मालकिन और उनकी बेटियों की सामाजिक और आर्थिक असुरक्षा, और केराबांझी में बालधन की बहू का पितृसत्तात्मक रूढ़ियों के खिलाफ साहसिक प्रतिरोध इस बात का प्रमाण है कि उनकी कहानियाँ परंपरा और आधुनिकता के बीच टकराव को दर्शाती हैं। वे शिक्षा की परिवर्तनकारी शक्ति पर जोर देती हैं, जो नई पीढ़ी को रूढ़ियों को चुनौती देने का साहस प्रदान करती है।

डॉ. रोज केरकेट्टा की लेखन शैली में स्थानीय भाषा और संस्कृति का प्रामाणिक उपयोग, प्रतीकात्मकता और संवेदनशील चित्रण उनकी कहानियों को जीवंत और प्रभावशाली बनाता है। उनकी रचनाएँ आदिवासी समाज की सामूहिकता और सहजीविता के आदर्शों को प्रस्तुत करती हैं, लेकिन साथ ही डायन प्रथा, संपत्ति हड़पने और पुरुषवादी मानसिकता जैसे अंतर विरोधों को उजागर कर सामाजिक सुधार की आवश्यकता पर बल देती हैं। इस प्रकार, रोज केरकेट्टा की कहानियाँ आदिवासी समाज की जटिलताओं को समझने और नारी सशक्तिकरण के लिए एक प्रेरणादायक मंच प्रदान करती हैं, जो सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. https://hindi.feminisminindia.com/2025/08/13/roj-kerketta-prominent-tribal-writer-and-social-activist-from-jharkhand&hindi/doa/15/10/2025.
2. https://hindi.feminisminindia.com/2025/08/13/roj-kerketta-prominent-tribal-writer-and-social-activist-from-jharkhand-hindi/doa/15/10/2025.
3. टेटे वंदना, एलिस एक्का की कहानियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ–27
4. https://hindikahani.hindi-kavita.com/HK-Rose-Kerketta.php
5. रोज केरकेटा, पगहा जोरी–जोरी रे घाटो, देशज प्रकाशन, रांची, प्रथम संस्करण, 2011–पृष्ठ–45.
6. रोज केरकेटा, पगहा जोरी–जोरी रे घाटो, देशज प्रकाशन, रांची, प्रथम संस्करण, 2011–पृष्ठ–52.

*****